मैंने नाता तोड़ा

सुषम बेदी

मैंने

नाता

तोड़ा

(उपन्यास)

-- लेखिका :
सुषम बेदी
कोलंबिया यूनिवर्सटी, न्यूयार्क

१

चौदहवें साल ने अचानक मुझको बड़ा कर दिया था। इस तरह बड़ा कि ज़िंदगी का रुख़ ही पलट गया। जिस दिशा में जीवन सामान्य गति से आगे बढ़ रहा था, वह दिशा ही सामने से किसी छलावे की तरह खिसक गयी। सामने थी एक अंधेरी खोह। मैं बेबस सी उस खोह की ओर बढ़ती जा रही थी।

इस तरह से हुई थी शुरुआत इस कहानी की --

एक इतवार मैं रेडियो स्टेशन से लौटी तो भोजन के दौरान पिताजी बोले-

"तुझे मालूम है न कि मेरा तबादला हो गया है."

"सच! कब..कहां?"

"पानागढ़"

' वो कहां पर है?"

"पश्चिमी बंगाल में।"

"वो कैसी जगह है?"

"नान फैमिली स्टेशन है."

"तो मेरा स्कूल?"

"स्कूल वहां कुछ खास नहीं....प्राईमरी वगैरह ही होंगे। तेरी नवीं तो जाने से पहले खत्म हो ही जायेगी। दसवीं प्राईवेटली पढ़कर बोर्ड का इम्तहान दे देना।"

मुझको विश्वास नहीं हो रहा था कि पिताजी मेरी पढ़ाई को लेकर इस तरह की बात कह सकते हैं। आखिर उनका ही सपना था कि सारी बेटियां पढ़लिख जायें। अब ऐसी क्या मजबूरी थी।

अजय को एक दूसरे शहर में बोर्डिंग में भेजा जा चुका था।वह मेधावी था। स्कूल में अव्वल आता था।इसका पूरा अंदाज़ पिताजी को था। उसमे कैरियर बनाने की महात्वाकांक्षायें भी पिताजी ने ही भरी थीं। उसे डाक्टर बनना था या सेना में भरती होना था? इसका चर्चा आये दिन घर में होता था।रितु तो नालायक थी न।उसके स्कूल की परवाह क्योंकर की जाती। पर रितु को कुछ तो करना था।

मेरे दिमाग में तूफानी का चेहरा घूम रहा था। उसे छोड़कर कहीं जाने का सोच भी नहीं सकती थी। पढ़ाइ मेरे बचाव का इकलौता ज़रिया थी। मैंने और भी जोर देकर कहा-
"क्याऽऽऽऽऽ? मैं प्राईवेटली पढ़ूंगी.....सारा पढ़ा-पढ़ाया यूं ही चौपट....मुझे तो ढंग के स्कूल में ही पढ़ना है।चाहे जो भी हो।" आखिरी वाक्य कहते-कहते मेरी आवाज में दृढ़ता आ गयी थी।
पिताजी बेचारगी से बोले-"वह तो मैं भी चाहता हूं..पर करें क्या! तेरे स्कूल में बोर्डिग है नहीं, वर्ना छोड़ जाते।"

"पर मेरी तो सारी पढ़ाई खराब हो जायेगी।"

"तू समझती क्यों नहीं। तुझसे ज्यादा मुझे तेरी पढ़ाई खराब होने का अफसोस है...लेकिन और कोई चारा भी तो नहीं।"

"अजय को बोर्डिग में भेज रहे हैं तो.."मैंने हिम्मत करके सामना किया था।
पिताजी की आवाज में कुछ हिकारत सी महसूस हुई मुझको-"तुझे वहां दाखिला नहीं मिलेगा। फर्स्ट क्लास होनी चाहिये उस स्कूल के लिये।"
खामोश हो रही थी तब मैं।
तब अचानक मुझे ओमी अंकल का ध्यान आया था। अंकल आखिर पिताजी की बुआ के लड़के थे। पिताजी के फस्ट कजन। उनके साथ इतना तो आनाजाना था। उनकी बेटी सरिता भी मेरी उम्र की थी। फिर उनके यहां रहने में क्या हर्ज था।ओमी अंकल मुझे बहुत प्यार करते थे। अकसर छुट्टियों में मैं उनके घर रहने चली आती थी।

"मुझे ओमी अंकल के यहां छोड़ दीजिये न!"
पल भर को पिताजी चुप ही रहे थे। शायद यह बात उनकी सोच के परे थी।

"बेटियों को इस तरह पराये घर नहीं छोड़ते।"

"अंकल तो मुझे अपनी बेटी की तरह प्यार करते हैं। उनके यहां मैं रह भी चुकी हूं। वह मेरे रहने से खुश ही होंगे।"

"मुझे यह ठीक नहीं लगता। बेटियां अपने ही घर में पलनी चाहियें"
पिताजी ने छोटा सा साफ-सीधा जवाब दे दिया था। उनकी आवाज की तर्ज़ ने मुझको उनका अंतिम फैसला सुना दिया था। यूं भी पिताजी के सामने ज्यादा बोलने की हिम्मत कभी पड़ती ही नहीं थी। और इस मामले में फैसला सिर्फ पिताजी का ही हो सकता था।
मुझे यह भी अंदाज़ था कि पिताजी ओमी अंकल को ज्यादा पसंद नहीं करते थे। अंकल का बड़ा सा स्टोर था और वे अपने आप को बिजनेसमैन कहते थे।पर पिताजी उनको दुकानदार कहते और उनका अपनी बेटियों से ज्यादा प्यार बढ़ाना उनको पसंद नहीं था। अंकल घर में आते ही कहते-"भई हमारी नन्हीं गुड़ियां कहां है?" तो रितु उनके आगे हाजिर हो जातीं।अंकल जफ्फी मार कर मुझे गालों पर चूमते और पिताजी अजीब सी नजर से उन्हें देखते। (बाद में जाकर

समझ आया था कि शायद पिताजी की आंखें तौल रही होतीं कि उसका हमें चूमना पितृवत् स्नेह से उपजा है या किसी घटियापन से।) फिर अंकल अपनी बेटियों को भी अकसर हमारे यहां लाने लगे तो पिताजी ने अंकल को घर के आदमी की तरह समझना शुरु किया। मुझे अंकल अच्छे लगते थे।अकसर वे हमारे लिये चाकलेट-टाफियां लेकर आते। बस जब पिताजी उनको घूर रहे होते तो मैं डर जाती। कभी लगता कि अंकल मेरे ज्यादा करीब थे।मुझे पिताजी से ज्यादा प्यार करते थे। घर में सबसे ज्यादा मैं ही अंकल की प्यारी थी। पिताजी को बुरा क्यों लगता है? कहीं उनको ऐसा तो नहीं लगता कि वे खुद तो अंकल के कज़न हैं पर अंकल रितु को ज्यादा प्यार करते हैं। अजय और दीदी तो कभी उनके सामने आते ही न थे।न ही अंकल उनके बारे में पूछताछ करते। सिर्फ रितु ही उनके आसपास घुमती।फिर अंकल के अपने बच्चे भी तो रितु की उम्र के ही थे।

मैं अचानक रोने लगी। बस रोना ही आता जाय..आता जाय। रोना थमने को ही नहीं आ रहा था। लग रहा था जैसे जिंदगी हमेशा के लिये ही खत्म हो गयी। तूफानी का मोहक साथ, वे स्कूल खत्म करके बढ़िया कालेज में पढ़ने के सपने...कालेज के खुले माहौल में विचरने के रोमानी □याल....सब कुछ पल भर में ही मलियामेट हो गया था।

अगले दिन ओमी अंकल घर पर आये थे।पिताजी ने बातों-बातों में अपने तबादले और मेरी नाखुशी का ज़िक्र किया तो अंकल झट से बोले-"लीजिये भाई साहब, आपको फिक्र किस बात की है? रितु मेरी भी तो बेटी है। हमारे यहां रहकर खत्म कर लेगी पढ़ाई।"

पिताजी ने पहले तो साफ मना कर दिया था-"मैं आप पर इतना बोझ क्योंकर डालूं?"

"बोझ किस बात का? जहां सरिता है वहीं रितु भी रहेगी। मुझे तो खुशी होगी कि रितु बेटी हमारे साथ भी कुछ देर रह लेगी। वर्ना वीकैंड पर तो उसे रेडियोस्टेशन जाना होता है....आप लोगों से वैसा मिलनाजुलना हो ही नहीं पाता जैसे कि परिवारों में होना चाहिये। फिर आप उसकी पढ़ाई के साथ इस तरह कैसे कर सकते हैं? इतनी मेहनती बच्ची है वह।"

पिताजी पर तो भी असर नहीं हुआ था।लड़की को किसी और के यहां पलने देना उनको मुआफिक आता ही नहीं था। बोले-"सोचता हू बच्चा लायक हो तो कहीं भी पढ़े अच्छा ही निकलेगा। और नालायक हो तो वैसे ही फर्क नहीं पड़ता।क्या पता पढ़े न पढ़े। " सो दोनों ओर से मेरी हार थी।

स्कूल की सहेलियां और तूफानी मेरी ज़िंदगी थे।मैं उनसे अलग होने का सोच भी नहीं सकती थी। लगता जैसे सब कुछ यहीं खत्म हो जायेगा। पर पिताजी से सिर्फ पढ़ाइ का ही तर्क दिया जा सकता था। फिर अंकल ने एक विकल्प सुझा ही दिया था। मुझे लगा कि मां-बाप की बंदिश, रोकाटोकी न रहने से मैं तूफानी और सहेलियों के साथ और भी ज्यादा वक्त गुजार सकती हूं। खूब घूमूंगी, मजे करूंगी उनके साथ। सचमुच बेहद लगाव था मुझे सहेलियों से, तूफानी से। मंजु

खास तौर से मेरी बहुत पक्की सहेली थी। हमारी बातें कहीं खत्म ही न होतीं। तब फोन उस तरह मुहय्या नहीं था। हम दोनों अगले दिन का इंतजार करते कि कब स्कूल में मिलें और फिर से बातों का सिलसिला शुरु हो। मुझे तो अब याद भी नहीं आता कि कौन सी बातें थीं जो कभी खत्म होने का नाम भी नहीं लेती थीं।हां उससे मैं तूफानी की बातें भी खूब किया करती थी लेकिन पवन के इलावा भी तो और बहुत सी बातें थीं। क्या रही होंगी।हम दोनों अपनी दीदियों की भी खूब बातें करते।उसकी भी दो बड़ी बहनें थीं जिनसे वह बहुत जुड़ी थी। उसकी तो दोनों दीदियों की शादी हो चुकी थी।वह अपने भांजे और भांजी के बारे में बताती रहती कि वे कितने प्यारे और सुंदर हैं। इस बीच दीदी के भी बेटा हुआ था जो मुझे बेहद प्यारा था। मेरे मन में भी उसका प्यारा सा चेहरे, उसकी किलकारियां भरे रहते थे। मैं भी उसके साथ बांटती छौने के प्रति अपने मन के भावों को।

हमारे पास पैसे तो बहुत कम होते थै पर पाकेट मनी से बचा-बचा कर हम कभी-कभी क्वालिटी जातीं और वहां टूटी-फूटी आइसक्रीम खातीं या बम्बासा में आईसक्रीम कोन खाती जो सिर्फ पचास पेसे में मिल जाता था उन दिनों। रेडियो स्टेशन पर आशा से भी बहुत दोस्ती थी। वह और मैं इतवारों को रेडियो स्टेशन पर भी अकसर मिल जाते।उसकी आवाज बहुत मीठी थी। बहुत छोटी बज़ी की भूमिका में उसकी आवाज बहुत सही बैठती थी और उसको वैसी ही भूमिकायें मिला करतीं।वह उम्र में मेरी जितनी होने पर भी बहुत छोटी दीखती थी । उससे मैं कभी अपने शारीरिक रूप से बड़े होने की बात नहीं कर पायी।लेकिन फिर भी हमारे बातचीत के विषय कभी खत्म नहीं होते थै। कितना कुछ और था। मेरी सहेलियां मेरी जिंदगी थीं। उनसे बिछड़ कर कहीं और जाना देशनिकाले से कम नहीं था। स्कूल का सुख ही सहेलियां दोस्त थे। रेडियो स्टेशन उस सुख में और चांद लगाता था।

मैंने भूख-हड़ताल की। मौनव्रत धारण किया। किसी भी पैंतरे का असर न हुआ तो हिम्मत जुटाकर पिताजी से सीधा सामना करने की ठानी।

"मुझे प्राईवेटली तो पढ़ना ही नहीं। इससे अच्छा है मैं पढ़ने का □याल ही छोड़ दूं।"

पिताजी को पूरी हमदर्दी से बात सुनती देख मैं कहती चली गयी थी-"आपको फिक्र किस बात की है? आप चाहे मुझे कितना भी बेवकूफ या बच्चा समझें, मैं समझदार लड़की हूं। चौदह बरस की हो गयी हूं। अपना भला-बुरा समझती हूं। कोई गलत काम नहीं करुंगी।अपना हर तरह से ध्यान रखूंगी। आपको किसी तरह की शिकायत का मौका नहीं मिलेगा। क्या आपको मेरा इतना भरोसा नही...मुझे सिर्फ अपनी पढ़ाई को डिस्टर्ब नहीं करना...यह मेरी जिंदगी का मसला है। आप..प्लीज़...प्लीज़...."

पिताजी ने आखिरकार मेरी ज़िद के आगे हथियार डाल दिये थे।